॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

तैत्तिरीयोपनिषद

विषय सूची

॥अथ यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद ॥ 4

प्रथमा शीक्षावल्ली 5

॥ प्रथम अनुवाक ॥ 5

॥ द्वितीय अनुवाक ॥ 7

॥ तृतीय अनुवाक ॥ 8

॥ चतुर्थ अनुवाक ॥ 12

॥ पञ्चम अनुवाक ॥ 16

॥ छठा अनुवाक ॥ 19

॥ सातवां अनुवाक ॥ 21

॥आठवां अनुवाक ॥ 23

॥नवां अनुवाक॥ 25

॥ दसवां अनुवाक॥ 27

॥ ग्यारहवां अनुवाक॥ 28

॥ द्वादश अनुवाक ॥ 32

द्वितीया वल्ली: ब्रह्मानन्दवल्ली 34

॥प्रथम अनुवाक॥ 35

॥द्वितीय अनुवाक॥ 37
॥तीसरा अनुवाक ॥ 39
॥चौथा अनुवाक॥ 41
॥पंचम अनुवाक ॥ 43
॥ छठा अनुवाक ॥ 45
॥ सातवाँ अनुवाक ॥ 48
॥आठवां अनुवाक ॥ 50
॥नवां अनुवाक ॥ 55
तृतीय वल्ली: भृगु वल्ली 56
॥प्रथम अनुवाक॥ 56
॥द्वितीय अनुवाक॥ 58
॥तृतीय अनुवाक॥ 59
॥चतुर्थ अनुवाक॥ 60
॥छठा अनुवाक॥ 62
॥ सातवाँ अनुवाक॥ 63
॥आठवां अनुवाक॥ 64
शान्तिपाठ 71

॥ श्री हरि ॥

॥अथ यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद ॥

॥ हरिः ॐ ॥

तैतरीय उपनिषद कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा के अंतर्गत तैत्तिरीय आरण्यक का भाग है। तैत्तिरीय आरण्यक के दस अध्यायों में से सातवें, आठवें और नवें अध्यायों को ही तैत्तिरीय उपनिषद कहा जाता है।

॥ श्री हरि ॥

॥तैत्तिरीयोपनिषद ॥

प्रथमा शीक्षावल्ली

॥ प्रथम अनुवाक ॥

इस प्रकरण का नाम शिक्षा वल्ली रखा गया है क्योंकि इस प्रकरण मे दी गयी शिक्षा अनुसार अपना जीवन जीने वाला मनुष्य इस लोक और परलोक के सर्वोत्तम फलों को ग्रहण करता हुआ, ब्रह्म विद्या प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

प्रथम अनुवाक में विभिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता परब्रह्म परमेश्वर से विभिन्न नाम व रूपों में उनकी स्तुति करते हुए प्रार्थना की गयी है।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।

नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।

त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि ।

सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु ।

अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १॥

ॐ हे परमात्मन्! हमारे लिये दिन और प्राण के अधिष्ठाता मित्र देवता कल्याणकारी हों, हमारे लिये रात्रि और अपान के वरुण देवता भी सुखकारी हों। आंख और सूर्यमंडल के अधिष्ठाता देवता अर्यमा हमारे लिए कल्याणकारी हों। बल और भुजाओं के अधिष्ठात्र देवता इंद्र तथा वाणी और बुद्धि के अधिष्ठात्र देवता ब्रहस्पति हमारे लिए शांति प्रदान करने वाले हों। त्रिविक्रम रूप से विशाल पगों वाले विष्णु हमारे लिए कल्याणकारी हों। सर्वैश्वर्य के स्वामी और सभी देवताओं के आत्मरूप ब्रह्म को नमस्कार है। हे वायुदेव आपको नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष प्राणरूप से ब्रह्म हो अत: मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। आप ही ऋतुओं के अधिष्ठात्र देवता हैं अत: आपको ऋतु नाम से भी जाना जाता है। आप ही सत्य के अधिष्ठाता हैं। अत: आपको सत्य नाम से भी जाना जाता है। वह सर्व शक्तिमान परमेश्वर मेरी रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे, रक्षा करे मेरी तथा मेरे आचार्य की।

ॐ मेरे त्रिविध (अधिभौतिक,अधिदैविक तथा आध्यत्मिक) तापों की शन्ति हो । वह परमात्मा शांति स्वरुप है।

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥प्रथम अनुवाक समाप्तः॥

॥ श्री हरि ॥

॥ अथ द्वितीयोऽनुवाकः॥

॥ द्वितीय अनुवाक ॥

द्वितीय अनुवाक में वेद मन्त्रों के उच्चारण नियमों का वर्णन करने की प्रतिज्ञा करके उनका संकेत किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है की उपनिषदों की शिक्षा ग्रहण करने वाला वेद पठन के कारण इन नियमों को पूर्णरूप से जानता था इसलिए शिष्य को स्मरण कराने के लिए इनका केवल संकेत मात्र किया गया है।

शिक्षाशास्त्रार्थसङ्ग्रहः

ॐ शीक्षां व्याख्यास्यामः । वर्णः स्वरः । मात्रा बलम् ।

साम सन्तानः । इत्युक्तः शीक्षाध्यायः ॥ १॥

अब हम शिक्षा का वर्णन करेंगे।

वर्ण, स्वर, मात्र, प्रयत्न, वर्णों का सम वृत्ति से उच्चारण और साधना, इस प्रकार वेद के उच्चारण की शिक्षा का अध्याय कहा गया।

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ द्वितीय अनुवाक समाप्तः॥

॥ अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ तृतीय अनुवाक ॥

तृतीय अनुवाक में आचार्य अपने और शिष्य की उत्तरोतर उन्नति की कामना करते हुए संहिता विषयक उपासना विधि का प्रारंभ करते हैं।

संहितोपासनम्:

सह नौ यशः। सह नौ ब्रह्मवर्चसम्।
अथातः सꣳहिताया उपनिषदम् व्याख्यास्यामः।
पञ्चस्वधिकरणेषु।
अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्।
ता महासꣳहिता इत्याचक्षते।
अथाधिलोकम्। पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तररूपम्।
आकाशः सन्धिः। वायुः संधानम्। इत्यधिलोकम् ॥ १॥

इम दोनों गुरू शिष्य का एक यश एक साथ बढे। एक ही साथ हमारे ब्रह्मतेज में भी वृद्धि हो। इस प्रकार शुभ इच्छा प्रकट करने के अनंतर, हम लोकों के विषय में, ज्योतिष के विषय में, विद्या के विषय में, प्रजा के विषय में और शरीर के विषय, पांच स्थानों मे सहित के रहस्य का वर्णन करेंगें। इन सभी को महासंहिता कहा जाता है। उनमे से यह पहली लोक विषयक संहिता है। पृथिवी सबका आधार

रूप होने के कारण पूर्व रूप है, सूर्य उत्तर रूप रूप है, आकाश सन्धि रूप है तथा वायु दोनों का संयोजक है। इस प्रकार लोक विषयक संहिता सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ।

अथाधिजौतिषम्।

अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तररूपम्। आपः सन्धिः।
वैद्युतः सन्धानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। ॥२॥

अब ज्योतिष विषयाक संहिता का वर्णन करते हैं।

अग्नि पूर्वरूप है, आदित्य उत्तररूप है। जल इन दोनों की संधि है और बिजली इनका संधान- जोड़ने का साधन है। इस प्रकार ज्योतिष विषय के सम्बन्ध में कहा गया।

अथाधिविद्यम्।

आचार्यः पूर्वरूपम्। अन्तेवस्युत्तररूपम्। विद्या संधिः। प्रवचन संधानम्।
इत्यधिविद्यम्।

अब विद्या विषयक संहिता का आरम्भ करते हैं।

गुरु पहला वर्ण है, समीप निवास करने वाला शिष्य दूसरा वर्ण है, विद्या संधि है। गुरु द्वारा दिया हुआ उपदेश ही संधान- जोड़ने का साधन है। इस प्रकार यह विद्या विषयक संहिता कही गयी।

अथाधि प्रजम्।

माता पूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम्। प्रजा संधिः। प्रजननꣳसंधानम् ।
इत्यधिप्रजम्।

अब प्रजा विषयक संहिता का निरूपण करते हैं।

माता पूर्ववर्ण है। पिता परवर्ण हैं, संतान संधि है तथा प्रजनन संधान- संधि का कारण है। इस प्रकार यह प्रजा विषयक संहिता कही गयी।

अथाध्यात्मम्।

अधरा हनुः पूर्वरूपम्। उत्तरा हनुरु त्तररूपम्। वाक् संधिः। जिह्वा संधानम्।
इत्यध्यात्मम्।

अब आत्म विषयक संहिता का वर्णन करते हैं।

नीचे का जबड़ा पूर्वरूप है, ऊपर का जबड़ा उत्तररूप है, वाणी संधि है और जिव्हा संधान है – वाणी रूप संधि की उत्पात्ति का कारण है।

इतीमा महासहिताः।

य एवमेता महासहिता व्याख्याता वेद।
संधीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनानाद्येन सुवर्येण लोकेन।

इस प्रकार या पांच महासंहिताएँ कहीं गयी। जिस मनुष्य को इस प्रकार ऊपर कही गयी संहिताओं का सम्यक ज्ञान हो जाता है। वह संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से, अन्न इत्यादि भोग के पदार्थों तथा स्वर्गलोक से संपन्न हो जाता है।

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ तृतीय अनुवाक समाप्तः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ चतुर्थ अनुवाक ॥

चतुर्थ अनुवाक में "श्रुतं मे गोपाय" इस वाक्य तक परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति के लिए आवश्यक बुद्धि व शारीरिक बल की प्राप्ति के उद्देश्य से परमपिता परमेश्वर से उनके नाम ओंकार द्वारा प्रार्थना करने का प्रकार बताया गया है।

मेधादिसिद्ध्यर्थं आवहन्तीहोममन्त्राः

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देव धारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरिविश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। ॥१॥

अब ऐश्वर्य की कामना के लिए हवन मन्त्रों का आरम्भ करते हैं।

जो वेदों मे सर्वश्रेष्ठ है; सर्वरूप है और अमृतस्वरूप वेदों से प्रधान रूप में प्रकट हुआ है, वह ओंकार स्वरुप सबका स्वामी मुझे धारणा युक्त बुद्धि से संपन्न करे। हे देव, मैं अमृतमय परमात्मा को अपने ह्रदय में धारण करने वाला बन जाऊं। मेरा शरीर सब प्रकार से रोग रहित हो और मेरी जिह्वा अतिशय मधुभाषिणी हो जाए। मैं दोनों कानों द्वारा अधिक सुनता रहूँ। हे प्रणव! आप लौकिक बुद्धि से

लौकिक बुद्धि से ढकी हुई परमात्मा की निधि है। मेरे सुने हुए उपदेश की रक्षा करें।

आवहन्ती वितन्वाना कुर्वाणाऽचीरमात्मनः। वासाꣳसि मम गावश्च।
अन्नपाने च सर्वदा। ततो मे श्रियमावह। लोमशां पशुभिः सह स्वाहा।
आमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। विमाऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा।
प्रमाऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा।
दमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥२॥

इस मन्त्र में 'ततः' पद से लेकर 'आवह स्वाहाः' तक ऐश्वर्य की कामना रखने वाले सकाम मनुष्यों के लिए परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए अग्नि में आहुति देने की विधि बताते हुए, ब्रह्मचारियों के हित के लिए किस प्रकार हवन करना चाहिए इसकी विधि बताई गयी है।

इसके अनन्तर हे देव ! मुझे, तत्काल ही, अनेकों प्रकार के वस्त्र, गौवें तथा खाने पीने के पदार्थ सदैव प्रदान करने वाली उनका विस्तार करने वाली, उन्हें बनाने वाली तथा रोएंवाले -भेद बकरी इत्यादि पशुओं से युक्त तथा अन्य पशुओं के सहित, उस श्री को प्रदान करें। इस उद्देश्य से आप को यह आहुति समर्पित की जाती है। ब्रह्मचारी मेरे समीप रहें इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। ब्रह्मचारी कपट शून्य हों इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। ब्रह्मचारी प्रमाणिक ज्ञान को ग्रहण करने वाले हों इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। ब्रह्मचारी इन्द्रियों का दमन करने

वाले हों, इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। ब्रह्मचारी मन को वश मे करने वाले हों, इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है।

यशो जनेऽसानि स्वाहा। श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा।
तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा।
तस्मिन् सहस्रशाखे। निभगाऽहं त्वयि मृजे स्वाहा। यथाऽऽपः
प्रवताऽऽयन्ति। यथा मासा अहर्जरम्। एवं मां ब्रह्मचारिणः।
धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा। प्रतिवेशोऽसि प्रमाभाहि प्रमापद्यस्व ॥ ३॥

इस मन्त्र में आचार्य को अपने लौकिक और परलौकिक हित के लिए जिन मन्त्रों द्वारा हवन करना चाहिए उनका वर्णन किया गया है।

मैं यशस्वी बन जाऊं इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। महान धनवानों के अपेक्षा भी अधिक धनवान बन जाऊं इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। हे भगवान् ! मैं आप मे प्रविष्ट हो जाऊं इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। हे परमेश्वर! आप मुझ मे प्रविष्ट हो जाएं इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। हे भगवान् ! उन हजारों शाखा वाले आप में मैं अपने आप को विशुद्ध कर लूँ, इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है।

जिस प्रकार जल निम्न स्थान से होकर समुद्र में चले जाते है, जिस प्रकार महीने दिनों का अंत करने वाले सवंत्सर रूप काल में चले जाते हैं। हे विधाता ! इसी प्रकार से मेरे पास सभी दिशाओं से ब्रह्मचारी आयें इस उद्देश्य से यह आहुति समर्पित की जाती है। हे परमात्मन ! आप सभी के आश्रय स्थान हैं, आप मेरे लिए अपने दिव्य स्वरुप को प्रकाशित कर दीजिये और मुझे प्राप्त हो जाइए।

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

॥ चतुर्थ अनुवाक समाप्त॥

॥ अथ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ पञ्चम अनुवाक ॥

पञ्चम अनुवाक में भूः, भुवः, स्वः और महः इन चारों व्याहृतियों की उपासना का रहस्य बताकर उसके फल का वर्णन किया गया है।

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः।
तासामुहस्मै तां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते ।
मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः।
भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् ।
सुवरित्यसौ लोकः। मह इत्यादित्यः।
आदित्येन वाव सर्वेलोक महीयन्ते। ॥१॥

भूः, भुवः, सुवः, इस प्रकार यह प्रसिद्ध व्याहृतियां हैं। इन तीनों की अपेक्षा जो चौथी व्याहृति 'महः' नाम से प्रसिद्ध है; इसको महाचमस के पुत्र ने सबसे पहले जाना था। यह चौथी व्याहृति ही ब्रह्म है। वह पहले कही गयी व्याहृतियों की आत्मा है। अन्य सभी देवता उसके अंग हैं। 'भूः' यह व्याहृति ही पृथ्वीलोक है। 'भुवः' यह अन्तरिक्ष लोक है। 'स्वः' यह प्रसिद्ध स्वर्गलोक है। 'महः' यह आदित्य – सूर्य है। क्योंकि आदित्य से ही समस्त लोक महिमान्वित होते हैं।

भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः।
मह इति चन्द्रमाः।

चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते।
भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि।
सुवरिति यजूꣳषि। मह इति ब्रह्म।
ब्रह्मणा वाव सर्वेवेदा महीयन्ते। ॥२॥

इस मन्त्र में ज्योतियों में इन व्याहृतियों द्वारा परमेश्वर की उपासना का प्रकार बताया गया है।

'भूः' यह व्याहृति ही अग्नि है। भुवः' यह वायु है। 'स्वः' यह आदित्य है। महः' यह चंद्रमा है क्योंकि चंद्रमा से ही समस्त ज्योतियाँ महिमामयी बनती हैं। 'भूः' यह व्याहृति ही ऋग्वेद है। भुवः' यह सामवेद है। 'स्वः' यह यजुर्वेद है। महः' यह ब्रह्म है क्योंकि ब्रह्म से ही समस्त वेद महिमावान होते हैं।

भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राण महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति ॥ ३॥

इस मन्त्र में प्राणों के विषय में इन व्याहृतियों का प्रयोग करके उपासना का प्रकार समझाया गया है।

'भूः' यह व्याहृति ही प्राण है। भुवः' यह अपान है। 'स्वः' यह व्यान है। 'महः' यह अन्न है क्योंकि अन्न से ही प्राण महिमावान होते हैं। यही

चारों व्याहृतियां -चार प्रकार मे विभक्त हैं। एक एक से चार-चार भेद होने से कुल सोलह व्याहृतियां हैं। इन व्याहृतियां को जो तत्व से जानता है, वह ब्रह्म को जानता है अर्थात इन चार व्याहृतियों को समझ कर उनके अनुसार परब्रह्म परमात्मा की उपासना करता है वह ब्रह्म को जान लेता है। उस ब्रह्मवेत्ता के लिए समस्त देवता भी भेंट समर्पित करते हैं- उसका आदर सत्कार करते हैं।

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥पञ्चम अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ छठा अनुवाक ॥

मनोमयत्वादिगुणकब्रह्मोपासनया स्वाराज्यसिद्धिः

स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः। अन्तरेण तालुके। य एषस्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्तते। व्यपोह्य शीर्षकपाले। भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति। भुव इति वायौ। सुवरित्यादित्ये। मह इति ब्रह्मणि। ॥१॥

पहले कहा गया जो यह हृदय के भीतर आकाश है; उसमें वह विशुद्ध स्वरूप्रकाश स्वरुप, अविनाशी, मनोमय, पुरुष (परमेश्वर) रहता है। दोनों तालुओं के बीच में जो स्तन के समान मांस लटकता है, और जहां केशों का मूल स्थान स्थित है, वहाँ सिर के दोनों कपालों का भेदन करके निकली हुई जो सुषुम्ना नाडी है वह इन्द्रियोनि – परमात्मा की प्राप्ति का द्वार है। अर्थात् मोक्ष साधन सम्पन्न जीवन्मुक्त पुरुष का आत्मा मरने के समय सहस्र दल कमल को भेदन करके और सिरके इस भाग को भेदन करके निकल जाता है। उस दशा में जब जीव मुक्त होता है तब भूः नामक अग्नि में वह ठहरता है, भुव नामक वायु अथवा अन्त रिक्ष में ठहरता है, सुव नामक आदित्य में यथेष्ट विहार करता है, और मह नामक ब्रह्म में स्थित हो जाता है।

आप्नोति स्वाराज्यम्। आप्नोति मनसस्पतिम्। वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः। श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः। एतत्ततो भवति। आकाशशरीरं ब्रह्म।सत्यात्म प्राणारामं मन आनन्दम्। शान्तिसमृद्धममृतम्। इति प्राचीन योग्योपास्व ॥२॥

उस अवस्था को प्राप्त कर वह जीव स्वराज्य-पूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेता है अर्थात वह जीव तब सभी इन्द्रियों की शक्तियां को वश में कर लेता है। मन के स्वामी को प्राप्त कर लेता है। वाणी का स्वामी हो जाता है। नेत्रों का स्वामी, कानो का स्वामी और विज्ञान का स्वामी हो जाता है। उस पहले बताये हुए साधन से उपयुक्त फल प्राप्त होता है। यह शरीर आकाश के सदृश शरीरवाला; सत्यरूप; इन्द्रिय आदि समस्त प्राणों को विश्राम देने वाला; मन को आन्नद देने वाला, शांति से संपन्न तथा अविनाशी है। ऐसा समझ कर हे प्राचीन योग्य ! तू उस ब्रह्म का स्वरुप इस प्रकार का मान कर उनकी उपासना कर।

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

॥छठा अनुवाक समाप्तः॥

॥ अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ सातवां अनुवाक ॥

पृथिव्याद्युपाधिकपञ्चब्रह्मोपासनम्:

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशाः। अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि। आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा। इत्यधिभूतम्। अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्ममाꣳसꣳस्नावास्थि मज्जा। एतदधिविधाय ऋषिरवोचत्। पाङ्क्तं वा इदꣳसर्वम्। पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तग्ꣳस्पृणोतीति ॥ १॥

पृथ्वीलोक, अंतरिक्ष लोक, स्वर्ग लोक, समस्त दिशाएँ, अवान्तर दिशाएं-दिशाओं के बीच का कोण यह पांच लोकों की पंक्ति है।

अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा तथा समस्त नक्षत्र, यह पांच ज्योति: समुदाय लोकों की पंक्ति है।

जल, औषधियां, वनस्पतियाँ, आकाश तथा इनका संघात स्वरुप अन्नमाय स्थूल शरीर, यह पांच स्थूल पदार्थों की पंक्ति है।

प्राण, व्यान, अपान, उदान और समान, यह पांच प्राणों की पंक्ति है।

नेत्र, कान, मन, वाणी और त्वचा, यह पांच करणों की पंक्ति है।

चर्म, मांस, नाडी, हड्डी और मज्जा, यह पांच शरीरगत धातुओं की पंक्ति है।

इस प्रकार सम्यक कल्पना से ऋषि ने कहा; यह सब निश्चय ही पंक्तियाँ हैं। इनका आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस रहस्य को समझकर अर्थात किस अधिभौतिक पदार्थ के साथ किस आध्यात्मिक पदार्थ का क्या सम्बन्ध है, इस बात को अच्छी तरह समझ कर मनुष्य आध्यात्मिक शक्ति से भौतिक पदार्थों का विकास कर लेता है और भौतिक पदार्थों से आध्यात्मिक शक्तियों की उन्नति कर लेता है।

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ सातवाँ अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ अष्टमोऽनुवाक॥

॥आठवां अनुवाक ॥

आठवें अनुवाक में 'ॐ' इस परमेश्वर स्वरुप शब्द के प्रति मनुष्य की श्रद्धा और रूचि उत्पन्न करने के लिए ओंमकार की महिमा का वर्णन किया गया है।

प्रणवोपासनम्:

ओमिति ब्रह्म । ओमितीदꣳसर्वम् ।
ओमित्येतदनुकृतिर्हस्म वा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति ।
ओमिति सामानि गायन्ति । ॐꣳशोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति ।
ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति ।
ओमिति ब्रह्मा प्रसौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति ।
ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति ।
ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥ १॥

ओम् यह ब्रह्म है। ओम् ही यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला सारा जगत् है। ओम् यह अक्षर ही निसंदेह ही अनुमोदन है। ओम शब्द का इच्चार्ण करके ही उपदेश का आरम्भ किया जाता है। ओम् बोलकर ही सामवेद के मन्त्र गाए जाते हैं। याज्ञिक लोग ओम्, शोम् ऐसा बोलकर यज्ञ साधनों की प्रशंसा करते हैं। ओम् ऐसा बोल कर अध्वर्युः यजमान की बात का यज्ञ में उत्तर देता है। ओम् बोलकर ही ब्रह्मा

ईश्वर की स्तुति करते हैं अथवा याज्ञिक कर्म करने की आज्ञा देते हैं। ओम् बोलकर ही अग्निहोत्र याज्ञिक कर्म करने की आज्ञा देता है । अध्यन करने के लिए उद्यत ब्राह्मण यदि ओम् बोलकर ब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा से अध्यन कार्य आरम्भ करता है वह ब्रह्म को अवश्य ही प्राप्त कर लेता है ।

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥

॥आठवां अनुवाक समाप्त॥

॥ अथ नवमोऽनुवाकः॥

॥नवां अनुवाक॥

नवम अनुवाक में इस विषय पर प्रकाश डाला गया है की वेदों का अध्ययन-अध्यापन करने वालों को अध्ययन-अध्यापन के साथ साथ शास्त्रों द्वारा बताये गए धर्म मार्ग पर चलना चाहिए अर्थात शास्त्र विहित कर्म नहीं करना चाहिए। यही बात उपदेशक और उपदेश सुनने वालों के भी समझनी चाहिए। जो कुछ भी कर्म इस मनुष्य जीवन मे किया जाएँ, वह शास्त्रानुकूल होने चाहियें । चाहे कितने ही विघ्न क्यों न उपस्थित हों, अपने कर्तव्य पालन रूप तप मे दृढ रहकर सत्यभाव तथा सत्य भाषण पर विशेष चयन देना चाहिए।

स्वाध्यायप्रशंसा:

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च।
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
सत्यमिति सत्यवचा राथी तरः।तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः।
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः। तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥ १॥

यथायोग्य सदाचार का पालन तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन अवश्य करना चाहिए । सत्यभाषण तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। तपश्चर्या तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। इन्द्रियों का दमन तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। मन का निग्रह और तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। अग्नियों का चयन तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। अग्निहोत्र तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। अतिथियों की सेवा तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। मनुष्योचित लौकिक व्यव्हार तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। गर्भाधान संस्कार रूप धर्म तथा तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। शास्त्र विधि अनुसार प्रजनन तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। कुटुंब वृद्धि का कर्म तथा तथा वेदों का अध्ययन-अध्यापन साथ साथ करना चाहिए। रथीतर के पुत्र सत्यवचा नामक ऋषि कहते हैं - सत्य ही इन सब में श्रेष्ठ है। पुरुशिष्ट के पुत्र तपोनित्य नामक ऋषि कहते हैं – तप ही इन सब में श्रेष्ठ है। मुद्ल के पुत्र नाक मुनि कहते हैं - वेदों का अध्ययन-अध्यापन ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वही तपसिद्धि प्रदान करने वाला तप है।

॥इति नवमोऽनुवाकः॥

॥ नवां अनुवाक समाप्त॥

॥ अथ दशमोऽनुवाकः ॥

॥ दसवां अनुवाक॥

इस अनुवाक में त्रिशंकु नामक ऋषि ने परमात्मा को प्राप्त कर जो अपना अनुभव व्यक्त किया था उसे ही वर्णित किया गया है।

ब्रह्मज्ञ्यानप्रकाशकमन्त्रः

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव।
ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि।
द्रविणꣳसवर्चसम्। सुमेध अमृतोक्षितः।
इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥ १॥

मैं इस पापयुक्त संसार रूपी वृक्ष का नाश करने वाला हूँ। मेरा यश पर्वत के शिखर की भांति उन्नत है। अन्नोत्पादक शक्ति से परिपूर्ण सूर्य में जैसे उत्तम अमृत विद्यमान रहता है, उसी प्रकार मैं भी अतिशय अमृत स्वरुप हूँ। प्रकाश युक्त धन का भंडार हूँ। परमानन्द अमृत से अभिसिंचित तथा श्रेष्ठ बुद्धि से युक्त हूँ। यह त्रिशंकु ऋषि का अनुभव किया हुआ वेदोपदेश है, वेद का सार है।

॥इति दशमोऽनुवाकः ॥

॥ दसवां अनुवाक समाप्तः ॥

॥एकादशऽनुवाकः॥

॥ ग्यारहवां अनुवाक॥

ब्रह्मचर्य जीवन में वेदों का भलीभांति अधययन कर, गृहस्थ आश्रम मे मनुष्य को अपना जीवन कैसे व्यतीत करना चाहिए, यही इस अनुवाक में आचार्य द्वारा अपने ब्रह्मचारी शिष्यों को समझाया गया है।

शिष्यानुशासनम्:

वेदमनूच्याचार्योन्तेवासिनमनुशास्ति ।
सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः ।
आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः ।
सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् ।
कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् ।
स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १॥

वेदों का भलीभांति अध्ययन करवा कर आचार्य अपने आश्रम मे रहने वाले ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को शिक्षा देता है: तुम सदा सत्य बोलो। धर्माचरण करो। स्वाध्याय से कभी मत चूको। आचार्य के लिये दक्षिणा के रूप में वंचित धन लाकर दो और उसके पश्च्यात उनकी आज्ञा से गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश कर संतान परम्परा मे संलग्न होकर उसका उच्छेद नहीं करना। सत्य बोलने में प्रमाद न करना । धर्म में

प्रमाद न करना । अग्निहोत्र सन्ध्या आदि कार्यों में कभी प्रमाद न करना सुखों के साधन धनादि की प्राप्ति में कभी प्रमाद न करना। स्वाध्याय और वेदो के अध्ययन अध्यापन में कभी प्रमाद न करना ।

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव ।
पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ।
यान्यनवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इतराणि ।
यान्यस्माकꣳसुचरितानि । तानि त्वयोपास्यानि ॥ २॥

देवकार्य और पितृकार्यों मे प्रमाद न करना। माता को देव तुल्य समझो। पिता को देव तुल्य समझो। आचार्य को देव तुल्य समझो और अतिथि को भी देव तुल्य समझो। दोष रहित जितने भी उत्तम कर्म हैं, केवल उनका ही तुम्हे सेवन करना चाहिये।

नो इतराणि । ये के चारुमच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः ।
तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् ।
अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् ।
भिया देयम् । संविदा देयम् ।
अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३॥

हमारे दोषयुक्त कर्मों का तुम्हे कभी भी आचरण नहीं करना चाहिए। अन्य, जो भी कोई, हमसे श्रेष्ठ आचार्य-ब्राह्मण इत्यादि पूज्य पुरुष घर पर पधारें, उनको पाद्य-अर्ध्य आसन आदि प्रदान करके सब प्रकार से उनका सम्मान तथा यथायोग्य सेवा करनी चाहिए। अपनी शक्ति के अनुसार यथोचित दान श्रद्धापूर्वक देने के लिए तुम्हे सदा तत्पर रहना चाहिए। अश्रद्धा पूर्वक कोई भी दान नहीं देना चाहिए। दान

सदैव अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार लज्जा पूर्वक देना चाहिए। मन मे दानीपन के अभिमान को नहीं आने देना चाहिए तथा तथा दान लेने वाले स्वयं भगवान् ही हैं, इस प्रकार भगवान का भय मानते हुए दान देना चाहिए। परन्तु जो कुछ भी दान दिया जाए वह विवेकपूर्वक, निष्काम भाव से, अपना कर्तव्य समझ कर देना चाहिए। इसके बाद यदि तुमको कर्तव्य के निर्णय करने में किसी प्रकार की शंका हो अथवा सदाचार के विषय में कोई भी कदाचित शंका हो जाए।

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः ।
अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् ।
तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु ।
ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः ।
अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् ।
तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः ।
एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् ।
एवमु चैतदुपास्यम् ॥ ४॥

तब ऐसी स्थिति में वहाँ जो कोई उत्तम विचार रखने वाले, उचित परामर्श देने में कुशल, सत्कर्म और सदाचार में तत्परता पूर्वक लगे हुए, सबके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार रखने वाले तथा एकमात्र धर्म पालन की ही इच्छा रखने वाले विद्वान् ब्राह्मण अथवा ऐसे ही महापुरुष हों – वह ऐसी स्थिति में जैसा आचरण करें, वैसा ही आचरण तुम्हे भी करना चाहिए अर्थात सत्पुरुषों के उच्च आचरण का अनुसरण करना चाहिए। यही वेदों का रहस्य है, शास्त्रों की

आज्ञा है, यही शास्त्रों का निचोड़ है। यही गुरु व माता पिता का अपने शिष्यों तथा संतानों के प्रति उपदेश है। यही अनुशासन है – परम्परागत विद्या है। अत: तुम्हे इसी का अनुष्ठान करना चाहिए। इसी प्रकार कर्तव्य तथा सदाचार का पालन करना चाहिए।

॥ इति इत्येकादशऽनुवाकः॥

॥ एकादश अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ द्वादशोऽनुवाकः ॥

॥ द्वादश अनुवाक ॥

शिक्षावल्ली के इस अंतिम द्वादश अनुवाक में विभिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता परब्रह्म परमेश्वर से विभिन्न नाम व रूपों में उनकी स्तुति करते हुए प्रार्थनापूर्वक कृतज्ञता प्रकट की गयी है। भाव यह है की समस्त अधिदैविक, आध्यात्मिक तथा अधिभौतिक शक्तियों के रूप मे तथा उकने अधिष्ठाता मित्र, वरुण आदि देवताओं के रूप में जो सबके आत्मा अंतर्यामी परमेश्वर हैं – वह सभी प्रकार से हमारे लिए कल्याणकारी होकर हमारी उन्नति के मार्ग को प्रशस्त करें। हम सबके अंतर्यामी ब्रह्म को नमस्कार करते हैं।

उत्तरशान्तिपाठः

शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा ।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।
नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि ।
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् ।
सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् ।
आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् ।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १॥

ॐ हे परमात्मन्! हमारे लिये दिन और प्राण के अधिष्ठाता मित्र देवता कल्याणकारी हों, हमारे लिये रात्रि और अपान के वरुण देवता भी सुखकारी हों। आंख और सूर्यमंडल के अधिष्ठाता देवता अर्यमा हमारे लिए कल्याणकारी हों। बल और भुजाओं के अधिष्ठात्र देवता इंद्र तथा वाणी और बुद्धि के अधिष्ठात्र देवता ब्रहस्पति हमारे लिए शांति प्रदान करने वाले हों। त्रिविक्रम रूप से विशाल पगों वाले विष्णु हमारे लिए कल्याणकारी हों। सर्वैश्वर्य के स्वामी और सभी देवताओं के आत्मरूप ब्रह्म को नमस्कार है। हे वायुदेव आपको नमस्कार है। आप ही प्रत्यक्ष प्राणरूप से ब्रह्म हो अत: मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूँगा। आप ही ऋतुओं के अधिष्ठात्र देवता हैं अत: आपको ऋतु नाम से भी जाना जाता है। आप ही सत्य के अधिष्ठाता हैं अत: आपको सत्य नाम से भी जाना जाता है। वह सर्व शक्तिमान परमेश्वर मेरी रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे, रक्षा करे मेरी तथा मेरे आचार्य की।

ॐ मेरे त्रिविध (अधिभौतिक,अधिदैविक तथा आध्यत्मिक) तापों की शन्ति हो । वह परमात्मा शांति स्वरुप है।

॥ इति द्वादशोऽनुवाकः द्वादश अनुवाक ॥

॥ इति शीक्षावल्ली समाप्त ॥

॥ श्री हरि ॥

॥तैत्तिरीयोपनिषद ॥

द्वितीया वल्ली: ब्रह्मानन्दवल्ली

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ अथ प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥प्रथम अनुवाक॥

उपनिषत्सारसङ्ग्रहः

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाऽभुक्ता ।

ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। उसी भाव को व्यक्त करने वाली यह श्रुति कही गयी है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान्सह । ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥

ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरुप और अनंत है। जो मनुष्य परम विशुद्ध आकाश में विद्यमान परन्तु प्राणियों के हृदयरूपी गुफा में छुपे हुए उस ब्रह्म को जानता है। वह उस विज्ञानस्वरूप ब्रह्म के साथ समस्त भोगों का अनुभव करता है। इस प्रकार या ऋचा है।

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः ।
आकाशाद्वायुः।वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी ।
पृथिव्या ओषधयः । ओषधीभ्योन्नम् । अन्नात्पुरुषः ।
स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः ।
अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः।
अयमात्मा । इदं पुच्छं प्रतिष्ठा ।
तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

निश्चय ही उस सर्वत्र विद्यमान परमात्मा से सर्वप्रथम आकाश तत्व उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जलतत्व और जलतत्व से पृथ्वी तत्व उत्पन्न हुआ। पृथ्वी तत्व से औषधियां उत्पन्न हुईं। औषधियों से अन्न उत्पन्न हुआ। अन्न से ही यह मनुष्य शरीर उत्पन्न हुआ। यह मनुष्य शरीर निश्चय ही अन्न रसमय है। अन्नमय मनुष्य रूप जो पक्षी है उसका यह प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला सिर ही पक्षी का सिर है। यह दाहिनी भुजा ही दाहिना पंख है, बायीं भुजा जी बयां पंख है तथा शरीर का मध्य भाग ही उस पक्षी के शरीर का मध्यभाग है। यह दोनों पैर ही पूँछ एवं प्रतिष्ठा है। अन्न की महिमा के विषय में ही आगे कहे जाने वाला श्लोक है।

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

॥प्रथम अनुवाक समाप्त॥

॥अथ द्वितीयोऽनुवाकः॥
॥द्वितीय अनुवाक॥

पञ्चकोशोविवरणम्

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते । याः काश्च पृथिवीꣳश्रिताः ।
अथो अन्नेनैव जीवन्ति । अथैनदपि यन्त्यन्ततः ।
अन्नꣳहि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात् सर्वौषधमुच्यते ।
सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति । येऽन्नं ब्रह्मोपासते ।
अन्नꣳहि भूतानां ज्येष्ठम् । तस्मात् सर्वौषधमुच्यते ।
अन्नाद् भूतानि जायन्ते । जातान्यन्नेन वर्धन्ते ।
अद्यतेऽत्ति च भूतानि । तस्मादन्नं तदुच्यत इति ।

पृथ्वीलोक का आश्रय लेकर रहने वाले जितने भी प्राणी हैं, वह सब अन्न से ही उत्पन्न होते हैं। अन्न से ही जीवित रहते हैं तथा अंत में इस अन्न के उद्गम स्थान पृथ्वी में ही विलीन हो जाते हैं। अत: अन्न ही सब भूतों में श्रेष्ठ है। इसीलिए अन्न को सर्वऔषध रूप भी कहा जाता है। जो साधक अन्न ब्रह्म है इस भाव से अन्न की उपासना करते हैं, वह समस्त अन्न को प्राप्त कर लेते हैं। सभी भूतों मे श्रेष्ठ होने के कारण अन्न ही सर्वौषधमय कहलाता है । सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं तथा अन्न से ही बढ़ते हैं। यह सभी प्राणियों द्वारा खाया जाता है तथा यह भी सभी प्राणियों को खाता है – अपने आप में विलीन कर लेता है। इसलिए इसको 'अन्न' कहा जाता है।

तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् ।
अन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः ।
तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव ।
तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः ।
तस्य प्राण एव शिरः । व्यानो दक्षिणः पक्षः ।
अपान उत्तरः पक्षः । आकाश आत्मा ।
पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

उस अन्न-रसमय शरीर से बने इस स्थूल शरीर के अन्दर रहने वाला प्राणमय एक और शरीर है, जिससे यह शरीर व्याप्त है सो यह प्राणमय आत्मा स्थूल शरीराकार ही है, उस स्थूल शरीर की आकृति के अनुसार ही यह प्राणमय आत्मा है। उस प्राणमय आत्मा का मुखद्वार से निकलने वाला प्राण ही सिर है, व्यान दाहिना पंख है, अपान बांया पंख है, आकाश शरीर का मध्य भाग है और पृथिवी पूँछ एवं आधार है। उस प्राण की महिमा का आगे कहा जाने वाला श्लोक वर्णन करता है।

॥इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

॥द्वितीय अनुवाक समाप्त॥

॥ अथ तृतीयोऽनुवाकः॥

॥तीसरा अनुवाक ॥

प्राणं देवा अनु प्राणन्ति । मनुष्याः पशवश्च ये ।
प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात् सर्वायुषमुच्यते ।
सर्वमेव त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मोपासते ।
प्राणो हि भूतानामायुः । तस्मात् सर्वायुषमुच्यत इति ।
तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ।

जो जो देवता, मनुष्य और पशु आदि प्राणी हैं, वह सभी प्राण का अनुसरण करके ही जीवित रहते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए यह प्राण सबकी आयु कहलाता है। प्राण ही प्राणियों की आयु-जीवन का आधार है इसलिए सबकी आयु कहलाता है। इस प्रकार इस गूढ़ अर्थ को समझ कर जो भी प्राणी प्राण की उपासना करते हैं, वह निसंदेह समस्त आयु को प्राप्त कर लेते हैं। उसका यही शरीर में रहने वाला अंतरात्मा है जो पहले वाले अर्थात अन्नमय रसमय शरीर की अंतरात्मा है।

तस्माद्वा एतस्मात् प्राणमयात् ।
अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः ।
तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव ।
तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः ।
तस्य यजुरेव शिरः । ऋग्दक्षिणः पक्षः । सामोत्तरः पक्षः ।
आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा ।
तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

यह निश्चित है की इस प्राणमय पुरुष से भिन्न, उसके अन्दर रहने वाला एक और मनोमय आत्मा है, जिससे या सम्पूर्ण प्राणमय शरीर व्याप्त है। यह मनोमय आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार का ही है। उसके पुरुष तुली आकृति मे व्याप्त होने से ही यह मनोमय आत्मा पुरुष के आकार का है। उस मनोमय पुरुष का मानो यजुर्वेद ही सिर है। ऋग्वेद दाहिना पंख है। सामवेद बायाँ पंख है। आज्ञा अथवा विधिवाक्य ही शरीर का मध्य भाग है। अथर्वा और अंगीरा ऋषि द्वारा देखे गए अथर्ववेद के मन्त्र ही पूँछ एवं आधार है। इस मनोमय प्रुरुष की महिमा का आगे कहा जाने वाला श्लोक वर्णन करता है।

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः॥

॥तीसरा अनुवाक समाप्त॥

॥अथ चतुर्थोऽनुवाकः॥

॥चौथा अनुवाक॥

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् । न बिभेति कदाचनेति ।
तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ।

जहाँ से मन के सहित वाणी आदि इन्द्रियां, उसे न पाकर लौट आती हैं, उस ब्रह्म के आन्नद को जानने वाला पुरुष कभी भय नहीं करता, इस प्रकार यह श्लोक है। उस मनोमय पुरुष का भी यही परमात्मा शरीरान्त्वर्ती आत्मा है, जो पहले बताये हुए अन्नमय शरीर अथवा प्राणमय शरीर है।

तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् । अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः ।
तेनैष पूर्णः । स वा एष पुरुषविध एव ।तस्य पुरुषविधताम् ।
अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः।ऋतं दक्षिणः पक्षः ।
सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा ।
तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

यह निश्चित है की उस पहले बताए हुए इस मनोमय पुरुष से भिन्न, उसके अन्दर रहने वाला एक और आत्मा विज्ञानमय है। उस विज्ञानमय आत्मा से जिससे या सम्पूर्ण प्राणमय शरीर व्याप्त है। यह विज्ञानमय आत्मा निश्चय ही पुरुष के आकार का ही है। उसके पुरुष

आकृति मे व्याप्त होने से ही यह विज्ञानमय आत्मा पुरुष के आकार का है। उस विज्ञानमय पुरुष का मानो श्रद्धा ही सिर है। सदाचार का निश्चय दाहिना पंख है। सत्य भाषण का निश्चय ही बायाँ पंख है। योग अथवा ध्यान द्वारा परमात्मा के एकाग्रता ही शरीर का मध्य भाग है। मह: नाम से प्रसिद्ध परमात्मा ही पूँछ एवं आधार है। इस विज्ञानमय आत्मा की महिमा का आगे कहा जाने वाला श्लोक वर्णन करता है।

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

॥चौथा अनुवाक समाप्त ॥

॥अथ पञ्चमोऽनुवाकः॥

॥पंचम अनुवाक ॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपि च ।
विज्ञानं देवाः सर्वे ।ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति।
शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान्कामान् समश्नुत इति।
तस्यैष एव शारीर आत्मा ।यः पूर्वस्य ।

विज्ञान ही यज्ञों और कर्मों का विस्तार करता है। समस्त इन्द्रिय रूप देवता, सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म के रूप में विज्ञान की ही सेवा करते हैं । यदि कोई विज्ञान को ब्रह्म रूप से जानता है और यदि उससे प्रमाद नहीं करता अर्थात यदि कोई साधक विज्ञान स्वरुप आत्मा को ही ब्रह्म समझता है तथा इस विषय मे कोई भूल नहीं करता तथा निरंतर इसी प्रकार चिंतन करता रहता है । तो वह साधक शारीरिक अभिमान जनित पाप समुदाय को इस शरीर में ही छोड़ कर समस्त भोगों का अनुभव करता है। इस प्रकार यह श्लोक है । उस विज्ञानमयी आत्मा के भी अंतर्यामी आत्मा वे ही परब्रह्म परमेश्वर हैं, जो पहले वालों के अर्थात अन्नमय शरीर के, प्राणमय तथा मनोमय पुरुष के हैं।

तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् ।
अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः ।
स वा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् ।
अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः ।
मोदो दक्षिणः पक्षः ।प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा ।

ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

यह निश्चित है की उस पहले बताए हुए इस विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न, उसके अन्दर रहने वाला आत्मा आनंदमय, परमपिता परमात्मा है। यह विज्ञानमय परमात्मा भी सम्पूर्ण प्राणमय शरीर में व्याप्त है। यह आनंदमय परमात्मा पुरुष के समान आकार वाला ही है। उस विज्ञानमय के पुरुष आकृति मे व्याप्त होने से ही यह आनंदमय परमात्मा पुरुषाकार कहा जाता है। उस आनंदमय परमात्मा का मानो प्रिय ही सिर है। मोद दाहिना पंख है। प्रमोद बायाँ पंख है। आनंद ही परमात्मा का मध्य भाग है तथा स्वयं ब्रहम ही इनकी पूँछ एवं आधार है। इस आनंदमय परमात्मा की महिमा का आगे कहा जाने वाला श्लोक वर्णन करता है।

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

॥ पंचम अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ षष्ठोऽनुवाकः॥

॥ छठा अनुवाक ॥

असन्नेव स भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् ।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति ।

यदि कोई साधक ब्रह्म नहीं है, ऐसा समझता हैं तो वह असत ही हो जाता है अर्थात ईश्वर की सत्ता को न मानते हुए स्वेछाचार से सदाचार से भ्रष्ट आसुरी व तामसिक प्रवृति का हो जाता है। और यदि कोई साधक ब्रह्म के तत्व को न जानते हुए भी यह धारणा रखता है की ब्रहम अवश्य है तो ऐसे साधक को सत अर्थात सत्पुरुष समझा जाता है ।

तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ।

उस आनंदमय परमात्मा का भी यही शरीर रूप में रहने वाला आत्मा है, जो पहले वाले विज्ञानमय का था।

अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य कश्चन गच्छती ३ ।
आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चित्समश्नुता३ उ ।

इसके पश्च्यात यहाँ से अनुप्रश्न प्रारंभ करते हैं। प्रथम प्रश्न तो यह है की यदि ब्रह्म है तो उनको जानने वाला कोई भी साधक मृत्यूपरांत उस लोक में जाता है अथवा नहीं? दूसरा प्रश्न यह है की ब्रह्म को जानने वाले किसी भी साधक को परलोक प्राप्त होता है अथवा नहीं?

सोऽकामयत । बहुस्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत ।
स तपस्तप्त्वा । इदꣳसर्वमसृजत । यदिदं किञ्च ।
तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनु प्रविश्य ।
सच्च त्यच्चाभवत्। निरुक्तं चानिरुक्तं च ।
निलयनं चानिलयनं च। विज्ञानं चाविज्ञानं च ।
सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्। यदिदं किञ्च ।
तत्सत्यमित्याचक्षते। तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

उस परमेश्वर ने विचार किया कि मैं प्रकट होऊं और अनेक नाम, रूप धारण करके बहुत सा हो जाऊं । इस संकल्प शक्ति के साथ उन्होंने तप किया अर्थात अपने संकल्प का विस्तार करके यह जो भी कुछ देखने, सुनने और समझने मे आता है, इस समस्त विश्व की रचना की। उस जगत की रचना करने के पश्च्यात, वह उसी में प्रविष्ट हो गए। प्रविष्ट होने के पश्च्यात मूर्त और अमूर्त रूप से विद्यमान भूतों में अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इत्यादि दिखाई देने वाले भूतों मे तथा अदृश्य भूत जैसे वायु और आकाश के रूप में प्रविष्ट हो गए । फिट जिनका वर्णन किया जा सकता है और जिनका वर्णन नहीं भी किया जा सकता ऐसे विभिन्न पदार्थों के रूपों मे हो गए । इसी

प्रकार आश्रय देने वाले और आश्रय न देने वाले, जड़ और चेतन, सत्य और झूठ इन सबके रूप मे एक मात्र परमेश्वर ही एक रूप और नाम धारण कर व्यक्त हो गए। इसीलिए ज्ञानीजन कहते हैं कि "यहाँ जो कुछ भी देखने, सुनने और समझने मे आता है, वह सभी सत्यस्वरूप परमात्मा ही है।

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ छठा अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥
॥ सातवाँ अनुवाक ॥

अभयप्रतिष्ठा:

असद्वा इदमग्र आसीत् । ततो वै सदजायत ।
तदात्मान स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति ।

सूक्ष्म और स्थूल रूप मे प्रकट होने से पहले यह जड़ चेतनात्मक सम्पूर्ण जगत असत अर्थात अव्यक्त रूप मे विद्यमान था। उस अवयक्त अवस्था से यह सत अर्थात नामरूप प्रत्यक्ष जगत उत्पन्न हुआ है। उस परमात्मा ने अपने को स्वयं ही प्रकट किया है। इसलिए उन्हें सुकृत भी कहा जाता है।

यद्वै तत् सुकृतम् रसो वै सः
रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः
प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ।
एष ह्येवाऽऽनन्दयाति ।

निश्चय ही वह परब्रहम परमात्मा जो सुकृत कहे गए हैं, वह रस स्वरुप हैं।क्योंकि यह जीवात्मा इस रस को प्राप्त कर आनंद युक्त होता है। यदि यह आनंद स्वरुप, आकाश स्वरुप परमात्मा न होते तो कौन जीवित रह सकता था और कौन प्राणों की क्रिया अर्थात शरीर का हिलाना डुलना कर सकता था। निसंदेह यह परमात्मा ही सबको आनंद प्रदान करने वाला है।

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं
प्रतिष्ठां विन्दते । अथ सोऽभयं गतो भवति ।

क्योंकि जब कभी यह जीवात्मा इस अदृश्य, शरीर रहित, वाणी द्वारा वर्णन करने मे असमर्थ और दूसरे का आश्रय न लेने वाले परब्रहम परमात्मा में निर्भयता पूर्वक स्थिति लाभ करता है। तब वह निर्भय पद को प्राप्त कर लेता है, अर्थात सदा के लिए भय व शोक से रहित हो जाता है ।

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते ।
अथ तस्य भयं भवति । तत्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य ।
तदप्येष श्लोको भवति ॥ १॥

क्योंकि जब तक यह जीवात्मा, थोडा सा भी उन परमात्मा से विमुख रहता है तब तक उसको जन्म मृत्यु भय प्राप्त होता है । और यह भय केवल ईश्वर विमुख जीवात्माओं को ही नहीं होता अपितु अभिमानी, शास्त्रज्ञ विद्वान को भी प्राप्त होता है । इसी विषय पर आगे कहा जाने वाला श्लोक है।

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ सातवाँ अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ अष्टमोऽनुवाकः ॥

॥आठवां अनुवाक ॥

भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः ।
भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति ।

इन्ही परब्रहम परमेश्वर के भय से भय से ही पवन नियमानुसार चलता है । इन्ही के भय से सूर्य उदय होता है । इन्ही के भय से अग्नि, इंद्र और पांचवां मृत्यु यह सब अपना अपना कार्य सुव्यवस्थित रूप से करते हैं । इस प्रकार यह श्लोक है ।

सैषाऽऽनन्दस्य मीमाꣳसा भवति ।
युवा स्यात्साधुयुवाऽध्यायकः ।
आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः ।
तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् ।
स एको मानुष आनन्दः ।

अब आनंद सम्बन्धी मीमांसा पर विचार करते हैं । कोई श्रेष्ठ आचरण वाला साधू युवक हो, वेदों का अधयन्न कर चुका हो, शासन मे अत्यंत कुशल हो, उसके सम्पूर्ण अंग और इन्द्रियां सर्वथा दृढ हों तथा वह सब प्रकार से बलवान हो, और उसे यह धन से परिपूर्ण धरती प्राप्त हो जाए, तो यह भी मनुष्यलोक का एक आनंद है।

ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः ।
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो मनुष्य सम्बन्धी एक सौ आनंद हैं, वह मनुष्य-गन्धर्वों (जो मनुष्य उत्तम कर्म करके गन्धर्व योनि को प्राप्त हुए हैं) का एक आनंद होता है । जिसका अंत:करण भोगों की कामनाओं से दूषित नहीं हुआ है ऐसे वेदवेत्ता पुरुष भी वह स्वाभाविक आनंद है।

ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः ।
स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो मनुष्य-गन्धर्वों के एक सौ आनंद हैं, वह देवजातीय-गन्धर्वों (जो गन्धर्व मनुष्य उत्तम कर्म करके देवता योनि को प्राप्त हुए हैं) का एक आनंद है । तथा वही आनंद कामनाओं से अदूषित चित्तवाले श्रोत्रिय -वेदज्ञ को भी स्वाभाविक रूप से प्राप्त है।

ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः ।
स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः ।
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो देवजातीय-गन्धर्वों के एक सौ आनंद हैं, वह चिरस्थायी पितृलोक को प्राप्त हुए पितरों का एक आनंद है । और वही आनंद भोगो के प्रति निष्काम श्रोत्रिय -वेदज्ञ को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः ।
स एक आजानजानां देवानामानन्दः ।
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो चिरस्थायी पितृलोक को प्राप्त हुए पितरों के एक सौ आनंद हैं, वह आजानज नामक देवताओं का एक आनंद है । और वही आनंद उस लोक तक के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदज्ञ को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतं आजानजानां देवानामानन्दाः ।
स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः ।
ये कर्मणा देवानपियन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो आजानज नामक देवताओं के एक सौ आनंद हैं, वह उन कर्मदेव नामक देवताओं का एक आनंद है । वही आनंद जो वेदोक्त कर्मों से देवभाव को प्राप्त हुए हैं और उस लोक तक के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदज्ञ को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः ।
स एको देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो कर्मदेव नामक देवताओं के एक सौ आनंद हैं, वह देवताओं का एक आनंद है । और वही आनंद उस लोक तक के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदज्ञ को भी स्वभावतः प्राप्त है।

ते ये शतं देवानामानन्दाः । स एक इन्द्रस्याऽऽनन्दः।
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो देवताओं के एक सौ आनंद हैं, वह इंद्र का एक आनंद है । और वही आनंद इंद्र तक के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदवेत्ता को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतमिन्द्रस्याऽऽनन्दाः ।
स एको बृहस्पतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो इंद्र के एक सौ आनंद हैं, वह ब्रहस्पति का एक आनंद है । और वही आनंद ब्रहस्पति के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदवेत्ता को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः ।
श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ।

यह जो ब्रहस्पति के एक सौ आनंद हैं, वह प्रजापति का एक आनंद है । और वही आनंद प्रजापति के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय -वेदवेत्ता को भी स्वत: प्राप्त है।

ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः ।
स एको ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ४॥

यह जो प्रजापति के एक सौ आनंद हैं, वह ब्रह्म का एक आनंद है। और वही आनंद ब्रह्मलोक तक के भोगों में कामनारहित श्रोत्रिय - वेदवेत्ता को भी स्वत: प्राप्त है।

स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः। स य एवंवित् ।
अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतं
प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रामति ।
एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । एतं
विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रामति ।
एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रामति । तदप्येष श्लोको भवति ॥

वह परमात्मा जो मनुष्यों तथा सूर्य मे भी समान रूप से विद्यमान है,वह सबका अंतर्यामी एक ही है। जो इस प्रकार से जानने वाला ह, वह इस मृत्युलोक से विदा होकर, इस अन्नमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस प्राणमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस मनोमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस आनंदमय आत्मा को प्राप्त होता है। इस विषय में आगे कहा जाने वाला श्लोक इस प्रकार है।

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः॥

॥आठवां अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ नवमोऽनुवाकः॥

॥नवां अनुवाक ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते । अप्राप्य मनसा सह ।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति ।

मन के सहित वाणी आदि समस्त इन्द्रियां, जहाँ से उन्हें प्राप्त न करके वापस लौट आती हैं, उस ब्रह्म के आनंद को जानने वाला महापुरुष किसी से भी भय नहीं करता, इस प्रकार यह श्लोक है।

एतꣳह वाव न तपति । किमहꣳसाधु नाकरवम् । किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मान स्पृणुते । उभे ह्येवैष एते आत्मान स्पृणुते । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥

यह प्रसिद्ध ही है की उस महापुरुष को यह बात चिंतित नहीं करती की मैंने क्यों श्रेष्ठ कर्म नहीं किया अथवा मैंने क्यों पापाचरण किया। जो इन पुण्य- पाप कर्मों को इस प्रकार जन्म मरण रूप ताप का कारण जानने वाला है, वह आत्मा की रक्षा करता है, अवश्य ही उन पुण्य और पाप दोनों ही कर्मों को ताप का हेतु जानता है । वह पुरुष अपनी आत्मा की रक्षा करता है । इस प्रकार यह इस उपनिषद की ब्रह्मानन्द वल्ली पूर्ण हुई ।

॥ इति नवमोऽनुवाकः॥
॥ नवां अनुवाक समाप्त ॥

॥ इति ब्रह्मानन्दवल्ली: ब्रह्मानंदवल्ली समाप्त॥

॥ श्री हरि ॥

॥तैत्तिरीयोपनिषद ॥

तृतीय वल्ली: भृगु वल्ली

॥ अथ प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥प्रथम अनुवाक॥

भृगुर्वै वारुणिः । वरुणं पितरमुपससार ।
अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तस्मा एतत्प्रोवाच ।
अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति ।
तꣳहोवाच । यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ।
येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति।
तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ।
स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १॥

यह प्रसिद्ध है कि वारुणि वरुण के पुत्र, भृगुः अपने पिता वरुणके पास गए और विनयपूर्वक बोले: हे भगवन ! मुझे ब्रह्म का उपदेश कीजिये । इस प्रकार प्रार्थना करने पर, वरुण ने उनसे यह कहा: अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन, और वाणी, इस प्रकार यह सभी ब्रहा की उपलब्धि के द्वार है । इसके पश्च्यात वरुण ने भुगु से कहा, निश्चय ही यह सब प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले प्राणी, जिससे उत्पन्न होते हैं और

उत्पन्न होकर जिसके सहारे जीवित रहते हैं। तथा अन्त में इस लोक से प्रयाण करते हुए, जिसमे प्रवेश करते हैं। उसको तत्त्व से जानने की इच्छा कर, वही ब्रह्म है । इस प्रकार अपने पिता की बात सुनकर, भृगु ने तप किया । उन्होंने तप करके:

॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥ प्रथम अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ द्वितीयोऽनुवाकः॥

॥द्वितीय अनुवाक॥

पञ्चकोशान्तःस्थितब्रह्मनिरूपणम्

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि
भुतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति ।
अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय ।
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ।
अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच ।
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ।
स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १॥

यह निश्चय किया कि अन्न ही ब्रह्म है, क्योंकि समस्त प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं, अन्न से ही जीते हैं और मृत्यु उपरान्त अन्न रूप इस पृथ्वीमे ही प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार उसको जानकार वह वापस अपने पिता वरुण के ही पास गए तथा अपनी समझी हुई बात उनको बताई, परन्तु पिता वरुण ने उनका समर्थन नहीं किया। तब उन्होंने पुन: अपने पिता से कहा- भगवन् !मुझे ब्रह्म का बोध कराइये, तब उनसे पुन: वरुण ने कहा, तप से, ब्रह्म को तत्त्वतः जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है । इस प्रकार अपने पिता की बात सुनकर, भृगु ने तप किया । उन्होंने तप करके:

॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥
॥ द्वितीय अनुवाक समाप्त ॥

॥ अथ तृतीयोऽनुवाकः॥
॥तृतीय अनुवाक॥

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति ।
प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय ।
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ।
अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच ।
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ।
स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १॥ इति ॥

यह निश्चय किया कि प्राण ही ब्रह्म है क्योकि, सचमुच प्राण से ही ये समस्त, प्राणी, उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर, प्राण से ही जीवन धारण करते हैं और अन्त में यहॉ से प्रयाण करते हुए प्राण में ही सभी प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार उसे जानकर, पुनः अपने पिता वरुण के पास गए और वहाँ उन्होंने उसने अपना निश्चय सुनाया, जब पिता ने इसका अनुमोदन नहीं किया, तब वह पुन: बोले भगवन्,! मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिये इस प्रकार प्रार्थना करनेपर, वरुण ने उनसे कहा तप से, ब्रह्म को तत्त्वतः जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है । इस प्रकार अपने पिता की बात सुनकर, भृगु ने तप किया । उन्होंने तप करके:

॥ इति तृतीयोऽनुवाकः॥
॥तृतीय अनुवाक समाप्त ॥

॥अथ चतुर्थोऽनुवाकः॥
॥चतुर्थ अनुवाक॥

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति ।
मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय ।
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ।
अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच ।
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ।
स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १॥

इस बार भृगु ने पिताके उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि मन ही ब्रह्म है क्योकि, सचमुच मन से ही ये समस्त, प्राणी, उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर, मन से ही जीवन जीते हैं और अन्त में यहाँ से प्रयाण करते हुए मन में ही सभी प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार उसे जानकर, पुनः अपने पिता वरुण के पास गए और वहाँ उन्होंने उसने अपना निश्चय सुनाया, जब पिता ने इसका अनुमोदन नहीं किया, तब वह पुन: बोले भगवन्,! मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिये इस प्रकार प्रार्थना करनेपर, वरुण ने उनसे कहा तप से, ब्रह्म को तत्त्वतः जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है । इस प्रकार अपने पिता की बात सुनकर, भृगु ने तप किया । उन्होंने तप करके:

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥
॥चतुर्थ अनुवाक समाप्त॥

॥अथ पञ्चमोऽनुवाकः॥
॥पंचम अनुवाक॥

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति ।
विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय ।
पुनरेव वरुणं पितरमुपससार ।
अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच ।
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति ।
स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥ १॥

इस बार भृगु ने पिताके उपदेशानुसार यह निश्चय किया कि विज्ञान ही ब्रह्म है क्योकि, सचमुच विज्ञान से ही यह समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर, विज्ञान से ही जीवन जीते हैं और अन्त में यहॉ से प्रयाण करते हुए विज्ञान में ही सभी प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार उसे जानकर, पुनः अपने पिता वरुण के पास गए और वहाँ उन्होंने उसने अपना निश्चय सुनाया, जब पिता ने इसका अनुमोदन नहीं किया, तब वह पुन: बोले भगवन्! मुझे ब्रह्म का उपदेश दीजिये इस प्रकार प्रार्थना करनेपर, वरुण ने उनसे कहा तप से, ब्रह्म को तत्त्वतः जानने की इच्छा करो, वही ब्रह्म है । इस प्रकार अपने पिता की बात सुनकर, भृगु ने तप किया । उन्होंने तप करके:

॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः॥
॥पंचम अनुवाक समाप्त॥

॥अथ षष्ठोऽनुवाकः॥

॥छठा अनुवाक॥

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाध्येव खल्विमानि
भूतानि जायन्ते । आनन्देन जातानि जीवन्ति ।
आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । सैषा भार्गवी वारुणी विद्या ।
परमे व्योमन्प्रतिष्ठिता ।स य एवं वेद प्रतितिष्ठति ।
अन्नवानन्नादो भवति। महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ।
महान् कीर्त्या ॥ १॥

इस बार भृगु ने पिता के उपदेशानुसार गहन विचार कर यह निश्चय किया कि आनंद ही ब्रह्म है क्योकि, सचमुच आनंद से ही यह समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर, आनंद से ही जीवन जीते हैं और अन्त में यहॉ से प्रयाण करते हुए आनंद में ही सभी प्रकारसे प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार ब्रह्म को जानने से उनको परब्रह्म का पूर्ण ज्ञान हो गया। वही यह भृगु की जानी हुई तथा वरुण की उपदेश की हुई विद्या है।यह विद्या विशुद्ध आकाशम्वरूप परब्रह्म परमात्मामें स्थित है । जो कोई अन्य साधक भी भृगु की भॉति तपस्यापूर्वक इस पर विचार करके परमानन्दम्वरूप परब्रह्म परमात्मा को जान लेता है, वह भी उन विशुद्ध परमानन्दस्वरूप परमात्मा मे स्थित हो जाता है । इतना ही नहीं इस लोक में भी वह बहुत अन्न वाला तथा अन्न को पचाने मे सक्षम हो जाता है । तथा संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से और बड़ी भारी कीर्ति से संपन्न होकर जगत में महान बन जाता है।

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥
॥ छठा अनुवाक समाप्त॥

॥ अथ सप्तमोऽनुवाकः॥
॥ सातवाँ अनुवाक॥

अन्नब्रह्मोपासनम्

अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् । प्राणो वा अन्नम् ।
शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् ।
शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ।
स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ।
अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १॥

अन्न की निन्दा नहीं करनी चाहिए, वह व्रत है। प्राण ही अन्न है और शरीर उस प्राण रूप अन्न से जीने के कारण अन्न का भोक्ता है। यह शरीर प्राण के आधार पर स्थित हो रहा है। इस तरह यह अन्न अन्न में ही स्थित हो रहा है। जो मनुष्य अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित हो रहा है। इस रहस्य को भलीभांति जानता है। वह अंत में उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है तथा अन्नवाला तथा अन्न को खाने वाला हो जाता है। वह संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से और बड़ी भारी कीर्ति से संपन्न होकर जगत में महान बन जाता है।

॥ इति सप्तमोऽनुवाकः॥
॥सातवाँ अनुवाक समाप्त॥

॥अथ अष्टमोऽनुवाकः॥

॥आठवां अनुवाक॥

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वा अन्नम् ।
ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् ।
ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ।
स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ।
अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १॥

अन्न की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, वह व्रत है। जल ही अन्न है और तेज रस स्वरुप होने के कारण अन्न का भोक्ता है। जल में तेज प्रतिष्ठित है तथा तेज मे जल प्रतिष्ठित है। इसी तरह यह अन्न अन्न में ही स्थित हो रहा है। जो मनुष्य अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित हो रहा है। इस रहस्य को भलीभांति जानता है। वह अंत में उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है तथा अन्नवाला तथा अन्न को खाने वाला हो जाता है। वह संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से और बड़ी भारी कीर्ति से संपन्न होकर जगत में महान बन जाता है।

॥ इति अष्टमोऽनुवाकः॥
॥आठवां अनुवाक समाप्त॥

॥अथ नवमोऽनुवाकः॥
॥नवां अनुवाक॥

अन्नं बहु कुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवी वा अन्नम् ।
आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः ।
आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् ।
स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति ।
अन्नवानन्नादो भवति । महान्भवति प्रजया
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ १॥

अन्न को बढ़ाना चाहिए, वह व्रत है। पृथ्वी ही अन्न है। आकाश पृथ्वी रूप अन्न का आधार होने से मानो अन्नाद अर्थात अन्न का भोक्ता है। पृथ्वी में आकाश प्रतिष्ठित है तथा आकाश मे पृथ्वी प्रतिष्ठित है। इसी तरह यह अन्न अन्न में ही स्थित हो रहा है। जो मनुष्य अन्न में ही अन्न प्रतिष्ठित हो रहा है। इस रहस्य को भलीभांति जानता है। वह अंत में उसी में प्रतिष्ठित हो जाता है तथा अन्नवाला तथा अन्न को खाने वाला हो जाता है। वह संतान से, पशुओं से, ब्रह्मतेज से और बड़ी भारी कीर्ति से संपन्न होकर जगत में महान बन जाता है।

॥ इति नवमोऽनुवाकः॥

॥ नवां अनुवाक समाप्त॥

॥अथ दशमोऽनुवाकः॥
॥दसवां अनुवाक॥

सदाचारप्रदर्शनम् । ब्रह्मानन्दानुभवःन कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत ।
तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् ।
अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नꣳराद्धम् ।
मुखतोऽस्मा अन्नꣳराध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम् ।
मध्यतोऽस्मा अन्नꣳराध्यते । एदद्वा अन्ततोऽन्नꣳराद्धम् ।
अन्ततोऽस्मा अन्न राध्यते । यः एवं वेद । ॥ १॥

अपने घर पर आये हुए किसी भी अतिथि को प्रतिकूल उत्तर न दे, यह एक व्रत है। इसलिये अथिति -सत्कार के लिये मनुष्य को किसी भी प्रकार से (कठिन परिश्रम से) बहुत-सा अन्न प्राप्त करना चाहिये, क्योकि सद्गृहस्थ घर पर आये हुए अतिथि से 'भोजन तैयार है', ऐसा कहते हैं। यदि वह सदगृहस्थ अतिथि से 'आइये, बैठिये, भोजन तैयार है, भोजन कीजिये' इत्यादि ऐसा कहकर अतिथि को मुख्यवृत्ति से अर्थात् अधिक श्रद्धा, प्रेम और सत्कारपूर्वक, तैयार किया हआ, भोजन देते हैं तो -निश्चय ही, उस दाता को अधिक आदर-सत्कार के साथ ही अन्न प्राप्त होता है। यदि वह अतिथि को मध्यम श्रेणी की श्रद्धा और प्रेम से तैयार किया हुआ भोजन देते हैं तो निःसन्देह उस दाता को मध्यम श्रद्धा और प्रेम से ही अन्न प्राप्त होता है। और यदि वह अतिथि को निकृष्ट श्रद्धा-सत्कार से तैयार किया हुआ भोजन देते हैं तो अवश्य ही उस दाता को निकृष्ट प्रकार से ही अन्न प्राप्त होता

है। जो इस प्रकार वेद के इस रहस्य को जानता है वह अतिथिके साथ अत्यंत उत्तम व्यवहार करता है।

क्षेम इति वाचि । योगक्षेम इति प्राणापानयोः ।
कर्मेति हस्तयोः । गतिरिति पादयोः । विमुक्तिरिति पायौ ।
इति मानुषीः समाज्ञाः । अथ दैवीः । तृप्तिरिति वृष्टौ ।
बलमिति विद्युति । यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु ।
प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे। ॥ २॥

वह परमात्मा वाणी मे रक्षा शक्ति के रूप से हैं। प्राण और अपान में प्राप्ति और रक्षा दोनों शक्तियों से रूप मे हैं। हाथों मे कर्म करने की शक्ति के रूप में है। पैरों में चलने की शक्ति के रूप में है। गुदा में मलत्याग की शक्ति के रूप में है। इस प्रकार यह मानुषी समाज्ञा अर्थात् आध्यात्मिक उपासनाएँ हैं। अब दैवी उपासनाओं का वर्णन करते हैं। वह परमात्मा वृष्टि में तृप्ति-शक्ति के रूप में है। बिजली में बल (पावर) बनकर स्थित है। पशुओं में यश के रूप में स्थित है। ग्रहों और नक्षत्रों में ज्योति रूपसे स्थित है। उपस्थ में प्रजा उत्पन्न करने की शक्ति- वीर्यरूप अमृत और आनन्द देने की शक्ति बनकर स्थित है तथा आकाश में सबका आधार बनकर स्थित है।

तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत । प्रतिष्ठावान् भवति ।
तन्मह इत्युपासीत । महान्भवति । तन्मन इत्युपासीत ।
मानवान्भवति तन्नम इत्युपासीत । नम्यन्तेऽस्मै कामाः ।
तद्ब्रह्मेत्युपासीत । ब्रह्मवान्भवति ।तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत ।
पर्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः ।परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः । ॥ ३॥

वह उपास्यदेव सबके आधार हैं, यदि साधक इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वह उपास्यदेव सबसे महान हैं, इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो महान हो जाता है। वह उपास्यदेव मन है इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो मनन शक्ति से संपन्न हो जाता है। वह उपास्यदेव नमन करने योग्य हैं, इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो समस्त काम-भोग रुपी पदार्थों को प्राप्त कर लेता है। वह उपास्यदेव ब्रह्म हैं, इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो ब्रह्म से युक्त हो जाता है। वह उपास्यदेव परमात्मा का मृत्यु प्रदान करने वाला अधिकारी है, इस प्रकार समझ कर उपासना करे तो ऐसे उपासक के प्रति द्वेष रखने शत्रु मृत्यु को प्राप्त होते हैं तथा उस जो भी उस उपासक के प्रति सब प्रकार से अनिष्ट चाहने वाले बंधुजन हैं, वह भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

स यश्चायं पुरुषे । यश्चासावादित्ये स एकः स य एवंवित् ।
अस्माल्लोकात्प्रेत्य ।एतमन्नमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।
एतं प्राणमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।
एतं मनोमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।
एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।
एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रम्य ।
इमाँल्लोकन्कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन् ।
एतत् साम गायन्नास्ते । ॥ ४॥

वह परमात्मा जो इस मनुष्य में है और जो सूर्य में भी विद्यमान है, वह दोनों का अन्तर्यामी एक ही है। जो मनुष्य इस प्रकार तत्व से जानने वाला है, वह इस लोक से उत्क्रमण करके, इस अन्नमय आत्मा को

प्राप्त होकर, इस प्राणमय आत्मा को प्राप्त होकर, इस मनोमय आत्मा को प्राप्त होकर, इस विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त होकर, इस आनंदमय आत्मा को प्राप्त होकर, इच्छा अनुसार भोग वाला तथा इच्छा अनुसार शरीर वाला हो जाता है तथा सब लोकों मे विचरता हुआ, इस आगे बताये हुए साम (समतायुक्त वचनों) का गायन करता है।

हा३वु हा३वु हा३वु
अहमन्नमहमन्नमहमन्नम् ।
अहमन्नादोऽ३हमन्नादोऽ३अहमन्नादः ।
अह९श्लोककृदह९श्लोककृदह९श्लोककृत् ।
अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य ।
पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भाइ ।
यो मा ददाति स इदेव मा३अऽवाः ।
अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि ।
अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा३म् ।
सुवर्न ज्योतीः । य एवं वेद ।
इत्युपनिषत् ॥ ५॥

आश्चर्य! आश्चर्य! आश्चर्य!, मैं अन्न हूँ। मैं अन्न हूँ। मैं अन्न हूँ। मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ। मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ। मैं ही अन्न का भोक्ता हूँ। मैं इनका संयोग करने वाला हूँ। मैं इनका संयोग करने वाला हूँ। मैं इनका संयोग करने वाला हूँ। मैं सत्य का अर्थात प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले जगत की अपेक्षा से सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला (हिरण्यगर्भ) और देवताओं से भी पहले विद्यमान अमृत का केंद्र हूँ। जो कोई मुझे

देता है वह इस कार्य से ही मेरी रक्षा करता है। मैं अन्न स्वरुप होकर अन्न खाने वाले को निगल जाता हूँ। मैं समस्त ब्रहाण्ड का तिरस्कार करनेवाला हूँ। मेरे प्रकाश की एक झलक सूर्य के समान है। जो कोई इस प्रकार परमात्मा के तत्व को जानता है, वह भी इसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह उपनिषद्-ब्रह्मविद्या समाप्त हुई।

॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥

॥ दसवां अनुवाक समाप्त॥

॥ इति भृगुवल्ली समाप्ता ॥
॥ भृगुवल्ली समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ हरिः ॐ ॥

॥ ॐ इति यजुर्वेदीय तैत्तिरीयोपनिषद समाप्ता ॥

॥ यजुर्वेद वर्णित तैत्तिरीयोपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥